प्राकृत/संस्कृत अभिलेखों की भाषा

डा. नीरज कुमार पाण्डेय

प्राचीन भारतीय इतिहास के क्रमबद्ध अध्ययन के लिए अभिलेखों का ज्ञान आवश्यक है। अभिलेख ही एक ऐसा ठोस एवं विश्वसनीय प्रमाण है जो ऐतिहासिक घटनाओं की सूचना प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करता है। अभिलेख प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के पुनर्गठन के लिए आवश्यक है क्योंकि उनमें अनेक प्रकार के पुण्य एवं लोकहित के कार्य और कर्ता के परिवार, समाज, मित्र, गुरु, आचार्य आदि के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सूचना होती है। राजनीतिक इतिहास के निर्माण के साथ ही सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक अध्ययन के लिये अभिलेखों का अत्यधिक महत्त्व है। अभिलेखों से तत्कालीन इतिहास की कई गुत्थियाँ सुलझती हैं और कुछ अभिलेखों में तो इतिहासपरक तथ्य भी दिये हैं जिससे बहुत से अर्वाचीन विद्वानों की यह मान्यता कि भारत में ऐतिहासिक दृष्टि नहीं थी, खण्डित हो जाती है। महाक्षत्रप रुद्रदामन के सुदर्शन तालाब लेख में चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक और उनके मन्त्रियों द्वारा तालाब को बनाने, अलंकृत करने आदि का विवरण दिया है। इसी प्रकार सारनाथ के कुमारदेवी अभिलेख में लगभग 1300 वर्ष बाद अशोक का नामोल्लेख है।

अभिलेख का शाब्दिक अर्थ है–किसी वस्तु पर उत्कीर्ण लेख। अभिलेख के लिये अंग्रेजी शब्द (Inscription) प्रयुक्त होता है। जिसका शाब्दिक अर्थ उत्कीर्ण लेख है। अभिलेख के अन्तर्गत उन सभी प्राचीन लेखों की गणना कर ली जाती है, जो पत्थर, धातु, मिट्टी या लकड़ी आदि पर उत्कीर्ण हैं। अभिलेख आकार की दृष्टि से कभी एक ही शब्द के हो सकते हैं तथा कभी-कभी बड़े-बड़े साहित्यिक ग्रन्थों की भाँति भी होते हैं। अभिलेखों के सम्यक् अध्ययन के लिये उनका विभाजन अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक है। परन्तु अभिलेखों का विभाजन किस आधार पर किया जाय या किस प्रकार के अभिलेख किस वर्ग में रखे जायं, इस पर विद्वानों में मतभेद है। अभिलेखों का विभाजन मोटे तौर पर दो भागों में किया जा सकता है–(1) उत्कीर्ण सामग्री के आधार पर और (2) प्रतिपाद्य विषय के आधार पर।

उत्कीर्ण सामग्री के आधार पर विभाजन करने पर अभिलेखों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है–शिलालेख, स्तम्भलेख, मूर्तिलेख, ताम्रलेख, गुहालेख आदि। इस वर्गीकरण से हमें कुछ कठिनाइयाँ हो सकती हैं जैसे मूर्ति लेख कहने से मूर्ति पर खुदे लेख का बोध होता है परन्तु वह मूर्ति पत्थर के अतिरिक्त धातु या लकड़ी की भी हो सकती है। अतः उत्कीर्ण सामग्री के आधार पर अभिलेखों का विभाजन समीचीन प्रतीत नहीं होता।

प्रतिपाद्य विषय के आधार पर अभिलेखों का विभाजन करना अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होता है। अभिलेखों का मुख्य प्रतिपाद्य क्या है? यह जानकर उन्हें उसी प्रकार के अभिलेखों के साथ रखा जा सकता है। यदि हम अभिलेखों के विभिन्न विषयों का विवेचन करें तो उन्हें मुख्य रूप से निम्नलिखित भागों में बाँट सकते हैं–

1. **धार्मिक और शिक्षापरक–** इस श्रेणी में वे सभी अभिलेख आ जाते हैं, जिनमें धर्म एवं आचार सम्बन्धी शिक्षा का उल्लेख हो। अशोक के अभिलेख निश्चित रूप से धार्मिक एवं शिक्षात्मक अभिलेख हैं। अशोक के अभिलेखों को धर्मलेख कहा भी जाता है। अशोक के अभिलेखों में अहिंसा, सद्व्यवहार, सेवा, शुश्रूषा, त्याग आदि आचारपरक शब्दों का उल्लेख है। बेसनगर गरुड़ स्तम्भ अभिलेख में संयम, अप्रमाद और त्याग को स्वर्ग ले जाने वाले तीन अमृत पथ कहा गया है।

2. **शासन सम्बन्धी अभिलेख–** इस वर्ग में वे अभिलेख आते हैं जिनमें राजा अपने प्रशासनिक

परिवर्त्तनों एवं कार्यों का विवरण देता है अथवा किसी अधिकारी को सम्बोधित कर अपनी आज्ञा की घोषणा करवाता है। अशोक अपने अभिलेख में धर्ममहामात्रों की नियुक्ति की घोषणा करता है। ज्ञान-प्रवाह संग्रहालय में प्रदर्शित हर्षवर्द्धन के ताम्रशासन में प्रशासनिक आदेश की स्पष्ट घोषणा है– "....... यश की वृद्धि के लिये अपनी सीमा तक फैले ऊपर लिखित गांव को इसकी सम्पूर्ण आय सहित, जिस पर राजवंश का अधिकार था, सब प्रकार के भारों से मुक्त तथा अपने जिले से अलग कर सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी की स्थिति तक पुत्र पौत्र आदि के लिये भूमिछिद्र न्याय से भार्गव गोत्रिय ऋग्वेदी भट्ट उलूखलस्वामी को अग्रहार रूप में दान दिया, यह जानकर आप लोग इसे स्वीकार करें। इस गांव के निवासियों को चाहिये कि हमारी आज्ञा को मानकर तुल्य, मेय, भाग, भोगकर, सुवर्ण आदि इन्हें दें तथा इनकी सेवा करें।"

3. **प्रशस्तिपरक अभिलेख–** प्रशस्तिपरक अभिलेखों में सम्बन्धित शासक का वंशक्रम, नाम, उपाधियाँ, जीवन परिचय, शासनकाल की प्रमुख घटनायें, समीपवर्ती राजाओं से उसके सम्बन्ध, शासन व्यवस्था, सामरिक उपलब्धियों, धार्मिक कृत्य तथा चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख होता है। विषयवस्तु की दृष्टि से प्रशस्तिपरक अभिलेख सर्वाधिक महत्त्व के होते हैं। विशुद्ध प्रशस्तिपरक अभिलेखों की श्रेणी में खारवेल का हाथीगुम्फा अभिलेख और समुद्रगुप्त के प्रयाग प्रशस्ति को रख सकते हैं।

4. **व्यापारिक अभिलेख–** ऐसे सभी अभिलेख जिनमें व्यापार सम्बन्धी निर्देश हों, इस श्रेणी में रखे जा सकते हैं। व्यापार सम्बन्धी अभिलेखों का सर्वोत्तम उदाहरण मालव सं. 529 के कुमारगुप्त और बन्धुवर्मन के समय के मन्दसौर प्रस्तर अभिलेख में प्राप्त होता है। इसमें रेशमी वस्त्रों का विज्ञापन बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है– "सौन्दर्य से सम्पन्न तरुणी सोने के हार, ताम्बूल और पुष्पाभरणों से प्रसाधित होने पर भी तब तक परम शोभा को प्राप्त नहीं कर पाती जब तक वह रेशम से बने युगल वस्त्र धारण नहीं कर लेती।"

5. **दान सम्बन्धी अभिलेख–** इसके अन्तर्गत प्राय: सभी प्रकार के अभिलेखों का समावेश हो जाता है क्योंकि दान अनेक प्रकार के होते हैं, जैसे गुहा दान, स्मारक के रूप में स्तूपों का दान, सभामण्डपों, भोजनशालाओं, प्रतिमा आदि का दान।

6. **पूजा या समर्पणात्मक अभिलेख-** जिन अभिलेखों में किसी देवता से सम्बन्धित स्तुति अथवा किसी मूर्ति या धातु अवशेषों के समर्पण का उल्लेख हो, उन्हें इस वर्ग में रखा जा सकता है। पिपरहवा से प्राप्त बुद्ध की अस्थिमञ्जूषा को समर्पणात्मक अभिलेखों का प्रथम उदाहरण मान सकते हैं।

इनके अतिरिक्त अभिलेखों की और श्रेणियाँ भी हो सकती हैं। इस तरह के वर्गीकरण से अभिलेखों का ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि विभिन्न पक्षों का अध्ययन सम्यक् रूप से हो सकता है।

अभिलेखों की भाषा

भारतीय शासकों के सबसे प्राचीन अभिलेखीय विवरण प्राकृत भाषा में मिलते हैं। मूलत: सारे भारत की पुरालेख भाषा प्राकृत थी। प्राकृत का सबसे प्राचीन अभिलेख बस्ती जिले के पिपरहवा स्थान का है जिसके लेख से अभिप्राय निकाला गया है कि इसे बुद्ध की अस्थियों को सुरक्षित करने के लिये मञ्जूषा का प्रयोग किया गया है। इस लेख के बारे में विद्वानों में विभिन्न मत है। कुछ लोग इसे बुद्धजी के परिनिर्वाण के तुरन्त बाद 483 ई. पूर्व मानते हैं और यदि इसे स्वीकार किया जाय तो सिन्धु संस्कृति के पश्चात् यह सबसे प्राचीन अभिलेख सिद्ध होता है। गोरखपुर के सहगौरा स्थान से मिला अभिलेख मौर्य युग का है और इसमें आकस्मिकता से निपटने के लिये दो अन्नभण्डारों या बीजभण्डारों का उल्लेख है।

सबसे महत्त्वपूर्ण अभिलेख सम्राट् अशोक के हैं जिन्हें पर्वत की बड़ी चट्टानों या छोटे शिलापट्टों, स्तम्भों और गुफाओं में उत्कीर्ण कराया गया है। अधिकतर लेखों में सम्राट् का नाम अशोक के स्थान पर देवानां प्रिय मिलता है जिसके भिन्न-भिन्न अर्थ लगाये गये हैं। दूसरा नाम प्रियदर्शी है। मास्की आदि के कुछ ही लेखों में अशोक नाम आया है। अशोक के लेख पालि भाषा में हैं जो प्राकृत का एक स्वरूप है। ये देश के विभिन्न भागों में मिले हैं और कुछ अफगानिस्तान और पाकिस्तान में भी हैं। अशोक के केवल कलिंग के शिलालेख में ही विजय का उल्लेख है। दूसरे लेखों में उसके धर्मानुशासन को प्रदर्शित किया गया है। इसके अनुसार माता-पिता और गुरु की सेवा शुश्रूषा, ब्राह्मण और श्रमणों को दान, सेवकों और दासों से उचित व्यवहार मानवमात्र का कर्त्तव्य है। जन कल्याण के लिये कुँओं को खोदना, सड़के बनवाना, वृक्ष लगवाना, यात्रियों को पानी आदि की सुविधा प्रदान करना और साथ ही पशुओं के कल्याण के कार्य करना भी अशोक के धर्म का उद्देश्य था। सम्राट् ने मनुष्यों के साथ-साथ पशुओं की चिकित्सा का उल्लेख किया है और यह धर्म व्यवस्था न केवल उत्तर भारत में अपितु चोल, पाण्ड्य आदि दक्षिण भारत के नगरों में भी थी।

सम्राट् अशोक धर्म सामञ्जस्य के बहुत अधिक पक्षधर थे और यह न केवल देश में अपितु देश के बाहरी सीमाओं में सहिष्णुता का भाव प्रचारित करते थे। अपने अभिलेखों के माध्यम से अशोक ने संदेश दिया कि एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति की हानि नहीं पहुँचाना चाहिये, गाली नहीं देनी चाहिये और दूसरे के धर्म में अपशब्द आदि कहकर बाधा नहीं पहुँचाना चाहिये।

अपने संदेश के माध्यम से अशोक ने मानव के नैतिक जीवन और मूल्यों को समन्वित करने की चेष्टा की और इसके लिए धर्ममहामात्र जैसे उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति की। इतिहास में कोई अन्य सम्राट् ऐसा न हुआ जो अपनी प्रजा के कल्याण के लिये इतना चिन्तित और कर्त्तव्यनिष्ठ रहा हो जैसा अशोक। यह सब सूचना हमें प्राकृत और पालि के अभिलेखों से ही मिलती है।

अशोक के अभिलेख मूलतः मगध साम्राज्य की केन्द्रीय भाषा (प्राकृत) में लिखे गये थे। फिर भी यह समझा गया कि दूरस्थ प्रदेशों की जनता के लिए यह भाषा थोड़ी अपरिचित थी। इसलिए अशोक ने इस बात की व्यवस्था की थी कि अभिलेखों के मूल पाठों का विभिन्न प्रान्तों में आवश्यकतानुसार थोड़ा बहुत लिप्यन्तर और भाषान्तर कर दिया जाय। यही कारण है कि अभिलेखों के विभिन्न संस्करणों में पाठभेद पाया जाता है। पाठभेद इस तथ्य का सूचक है कि भारत के विभिन्न भागों में विभिन्न बोलियाँ थीं जिनकी अपनी भाषागत विशेषतायें थीं। अतः भारत की आदि लिखित अथवा उत्कीर्ण प्राकृत और उसकी विभिन्न बोलियों के भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन के लिए अशोक के अभिलेख प्रचुर सामग्री है। अशोक के अभिलेखों में प्रयुक्त बोलियाँ भाषा विज्ञान के आधार पर निम्नलिखित भागों में बाँटी जा सकती है-

1. **पश्चिमोत्तरीय वर्ग** - जिसमें शहबाजगढ़ी और मानसेहरा अभिलेख सम्मिलित हैं।
2. **मध्य भारतीय वर्ग** - जिसमें बैराट, दिल्ली टोपरा, सारनाथ और कलिंग आदि अभिलेख हैं।
3. **पश्चिमी वर्ग** - जिसमें गिरनार तथा सोपारा के अभिलेखों की गणना है।
4. **दक्षिणी वर्ग** - जिसमें दक्षिण के अभिलेख सम्मिलित हैं।

इनमें से प्रत्येक की अपनी-अपनी विशेषतायें हैं जो निम्नांकित हैं-

1. **पश्चिमोत्तरीय वर्ग**
   - दीर्घ स्वरों (आ, ई, ऊ) का अभाव

- श, ष, स का प्रयोग
- रेफ् (देवनं प्रियो प्रियद्रशि) को छोड़कर संयुक्त व्यञ्जनों का अभाव
- ण का प्रयोग (अणपयेमि, ब्रमणिभेषु)

पश्चिमोत्तरीय वर्ग में जिस बोली का प्रयोग हुआ है उसकी सबसे बड़ी विशेषता है इसमें संस्कृत तत्त्वों की उपस्थिति। इससे यह प्रतीत होता है कि यह बोली मध्य भारतीय वर्ग की अपेक्षा संस्कृत से अधिक निकट थी।

2. **मध्य भारतीय वर्ग**
   - र के स्थान पर ल का व्यापक प्रयोग (लाजा = राजा, लाजिना = राजिना, सालिक = सारिका)
   - अहं के स्थान पर हकं का प्रयोग
   - ण का अभाव
3. **पश्चिमी वर्ग**
   - कहीं-कहीं त का ट में परिवर्तन (पटिवेसियेहि = प्रतिवेश्यैः, पटिविधानो = प्रतिविधानं)
   - श, ष, स में से केवल स का प्रयोग (उयानेसु = उद्यानेषु, पासंडा = पाषण्डा)
   - ण का यदा कदा प्रयोग
4. **दक्षिणी वर्ग**
   - ण का प्रयोग
   - श, ष, स में से केवल स का प्रयोग
   - र का ल में परिवर्तन नहीं

अशोक के अभिलेखों की विभिन्न बोलियों की विशेषताओं को देखने से यह ज्ञात होता है कि मध्य भारतीय भाषा ही उस समय की सार्वदेशिक भाषा थी। मूलतः इसी में अशोक के अभिलेख प्रस्तुत हुए थे। इसी में कतिपय परिवर्तन या संशोधन करके उनके स्थानीय संस्करण तैयार हुए थे।

संस्कृत का प्रयोग शिलालेखों में पहली शताब्दी ई. पू. से हो गया था और उसके कुछ समय पश्चात् ही हमें रुद्रदामन का विकसित/अलंकृत शैली में अभिलेख मिलता है। इससे पूर्व का धनदेव का अयोध्या अभिलेख है। प्रारम्भिक अभिलेखों में जिस संस्कृत भाषा का प्रयोग है उससे प्रतीत होता है कि पाणिनि के व्याकरण का प्रभाव भारत के मध्य भाग में पूरी तरह से नहीं व्याप्त हो सका था। राजकीय अभिलेखों में प्रशासनिक और व्यवस्था सम्बन्धी चर्चा है जबकि जनता के अभिलेखों में धर्म, दान, भवन-प्रतिष्ठा आदि है। वैसे धर्म दोनों प्रकार के लेखों में समान है। अर्थव्यवस्था, सामाजिक गतिविधि, भाषा और लिपि के क्रमिक विकास के लिए भी शिलालेखीय अभिलेखों का महत्त्व है। मथुरा के पुण्यशाला लेख से संचित राशि (corpus) बनाने का वर्णन है जिसे अक्षयनीवी कहा गया है। इसके ब्याज से भोजनशाला या सत्तूशाला चलती थी। अभिलेखों से यह भी प्रकाश पड़ता है कि कुषाण काल तक वर्ष और माह के साथ पक्ष को देने की परम्परा नहीं थी किन्तु गुप्त काल से कृष्णपक्ष और शुक्ल पक्ष आरम्भ हुए। गुप्त सम्राट् बुधगुप्त के समय से दिनों के नाम लिखने की परम्परा आरम्भ हुई।

सारनाथ में कनिष्क के तीसरे राज्य संवत्सर के लेख से अन्य बातों के साथ यह भी पुष्टि होती है कि आज का सारनाथ उस समय वाराणसी नगर का ही भाग था अथवा वाराणसी वहीं थी। वरुणा और असि दो नदियों के बीच की वाराणसी की स्थिति पौराणिक है। विक्रम संवत् का पुराना नाम कृत संवत् है और इसकी पुष्टि

राजस्थान के अभिलेख से होती है। संस्कृत भाषा का प्रयोग पहली शताब्दी ई.पू. से ही हो गया था किन्तु साहित्यिक और अलंकृत संस्कृत रुद्रदामन के अभिलेख में है जिसका कई दृष्टियों से महत्त्व है। द्वितीय शताब्दी के इस अभिलेख में यह उल्लेख है कि अशोक के समय नदियों की नालियों से सुदर्शन झील को भरा जाता था। राजा को प्रजा द्वारा चुने जाने का संकेत भी मिलता है, भले ही यह औपचारिकता मात्र ही हो। संकेत यह भी है कि रुद्रदामन ने मृत्युदण्ड समाप्त कर दिया था। मथुरा के गुप्त संवत् 61 के लेख में लकुलीश और पाशुपत संप्रदायों के आचार्यों और दो शिवलिङ्गों की स्थापना का उल्लेख है। इसके साथ ही उन्हें सुरक्षित रखने की भी चिन्ता व्यक्त की गयी है।

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति को कुछ विद्वान् समुद्रगुप्त का मरणोपरान्त लेख मानते हैं क्योंकि इसमें स्वर्ग की चर्चा है। इससे गुप्त शासकों का अपने उत्तम चरित्र से स्वर्गगामी होने की आकांक्षा भी अभिव्यक्त हो सकती है। समुद्रगुप्त ने पहले आर्यावर्त के सभी राजाओं को परास्त कर दक्षिण भारत के राजाओं को नियंत्रित क्यों किया, इसमें भी विवाद है। लेख में गीता के उस कथन की आवृत्ति हुई है जिसके अनुसार अवतार अथवा महापुरुष का जन्म दुष्टों के संहार और सज्जनों के उद्धार के लिये होता है। अचिन्त्यपुरुष विरुदावली से राजा विष्णु के समकक्ष प्रतीत होता है। स्थिति, अवसर और क्षेत्र के अनुसार समुद्रगुप्त की दिग्विजय के अनेक रूप हैं। उत्तर भारत में तो प्रायः सभी के राज्य गुप्त साम्राज्य के अंग बन गये किन्तु दक्षिण भारत में राज्य जीत कर लौटा दिये गये। केवल राजाओं को पराधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

कुमारगुप्त के शासन काल में मालवा क्षेत्र के राज्यपाल बन्धुवर्मा द्वारा उत्कीर्ण कराया और वत्सभट्टि द्वारा लिखा मन्दसौर का लेख भी महत्त्वपूर्ण है। इसमें गगनचुम्बी सूर्यमन्दिर के निर्माण का उल्लेख है। लेख महाकाव्य की शैली हैं है जिसमें कई स्थानों का विशद वर्णन है। कुछ श्लोक मेघदूत की शैली से मिलते हैं। सूर्य मन्दिर होने पर भी शिव और विष्णु का स्मरण हुआ है जिसमें धर्म सामञ्जस्य का संकेत मिलता है। लेख में मालव संवत् का प्रयोग हुआ है जो विक्रम संवत् का ही एक रूप है। गुप्तकाल गुप्तसंवत् के चलते हुए भी उनके राज्य में मालव या विक्रम संवत् का प्रयोग सदाशयता और सांस्कृतिक प्रतिबद्धता का संकेत है। यह शिलालेख जो वस्त्र व्यवसायियों द्वारा उत्कीर्ण कराया गया, आज की विज्ञापन शैली को सूचित करता है।

पुलकेशिन् द्वितीय के समय रविकीर्त्ति द्वारा लिखा ऐहोल शिलालेख कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। इसमें कालिदास और भारवि के नामों के उल्लेख से यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि महाकवि कालिदास सातवीं शताब्दी से पहले हुए। यद्यपि यह जिन मन्दिर के निर्माण के समय लिखाया गया किन्तु राजा स्वयं जैन नहीं थे। लेख में शक संवत् और महाभारत संवत् भी दिये हैं। इससे महाभारत संवत् के प्रचलन की सिद्धि होती है। युद्ध के वर्णन में गौड़ी शैली का वर्णन है और अन्यत्र सामान्य काव्यशैली।

चौथी शताब्दी ई. से पल्लवों के ताम्रपत्र मिलते हैं। उत्तर भारत में कुमारगुप्त का बांग्लादेश से ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है। ताम्रपत्रों का अभिप्राय भूमिदान था। इसमें दाता तथा उसके पूर्वज, देय भूमि का विवरण, ग्रहीता, जो मनुष्य और देवता प्रिय होते थे का वर्णन, विधि प्रक्रिया, कानूनी स्थिति, उपस्थिति अधिकारियों के नाम और दान की प्रकृति का उल्लेख रहता था।

अभिलेखों में जालसाजी सभी युगों में प्रसिद्ध रही है। इसका उद्देश्य करों से बचने के लिये अथवा भूमि हथियाने के लिये या ऐसा ही कोई स्वार्थ होता है। ऐसे ही ताम्रपत्र सासाराम और गया से प्राप्त हुए हैं। सासाराम से प्राप्त अभिलेख में यह रोचक तथ्य आता है कि स्वर्णहल गाँव के ब्राह्मणों ने एक जाली अनुदान गहड़वाल

राजा विजयचन्द्र के एक अधिकारी को घूस देकर प्राप्त कर लिया था। इसमें स्थानीय राजा प्रतापधवल ने अपने वंश के भावी शासकों को जाली दस्तावेज के विषय में सतर्क रहने के लिये कहा है।

उपर्युक्त समस्त विवरणों से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय अभिलेख भारतीय तत्त्वों की झलक प्रस्तुत करते हैं। प्राचीन प्रशस्तियों, साधारण अभिलेखों आदि से जो सूचनायें प्राप्त होती हैं उनका महत्त्व स्वयमेव स्पष्ट है। वस्तुतः अभिलेख प्राचीन इतिहास की आधारशिला है।

सन्दर्भ

- पाण्डेय राजबली, *अशोक के अभिलेख,* ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी
- पाण्डेय राजबली, *भारतीय पुरालिपि,* लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- सरकार दिनेश चन्द्र, *भारतीय पुरालिपि विद्या,* विद्यानिधि, दिल्ली
- नारायण अवध किशोर एवं वर्मा ठाकुर प्रसाद, *प्राचीन भारतीय लिपिशास्त्र एवं अभिलेखकी,* सिद्धार्थ प्रकाशन, वाराणसी।
- गुप्त परमेश्वरी लाल, *प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख* – खण्ड 1, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
- गुप्त परमेश्वरी लाल, *प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख* – खण्ड 2, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
- सत्यदेव शोभा एवं सत्यदेव अभिनव, *भारतीय पुरालिपि अभिलेख एवं मुद्रायें,* भवदीय प्रकाशन, अयोध्या
- गौड़ आनन्द प्रकाश, *प्राचीन लिपि मुद्रायें एवं अभिलेख,* घनश्याम दास एण्ड सन्स, फैजाबाद
- ज्ञान–प्रवाह में संचालित 'प्राकृत/संस्कृत अभिलेखों की भाषा' विषय पर आयोजित गहन अध्ययन शिविर के व्याख्यानों पर आधारित
- Sharma R.C., *The Splendour of Mathura Art and Museum, D.K. Printworld (P)* Ltd., New Delhi, 1994

• • • • •

नरेन्द्रचन्द्रः प्रथितरणो रणे जयत्यजेय्यो भुवि सिंहविक्रमः ।

चन्द्रगुप्त द्वितीय का स्वर्णमुद्रा अभिलेख